Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.gisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2024 GISRRJ | Volume 7 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095
doi : https://doi.org/10.32628/GISRRJ

समकालीन कथा-साहित्य और हिंदी सिनेमा का बदलता भाषायी परिदृश्य

सुंदरम आनन्द
शोधार्थी, हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली।

Article Info

Article History
Accepted : 20 May 2024
Published : 30 May 2024
Publication Issue :
Volume 7, Issue 3
May-June-2024
Page Number : 47-51

सारांशः- हिन्दी सिनेमा ने अपने बॉलीवुड में हुए अपने कायान्तरण को पूरी तरह आत्मसात कर लिया है। जिसका असर फिल्मों की कथा-वस्तु, उनके प्रस्तुतिकरण लक्षित दर्शक-वर्गों, व्यावसायिक रूझानों, सामाजिक सरोकारों के साथ-साथ भाषायी अनुप्रयोगों पर भी पड़ा है। डिजिटल क्रांति, ओटीटी प्लेटफॉर्म्स के विकास और विस्तार ने भी इसे व्यापक रूप से प्रभावित किया है। जिसकी परिणति 'क्रॉस ओवर' सिनेमा से गुज़रते हुए 'पैन इंडियन सिनेमा' जैसी परिघटनाओं में देखा जा सकता है। क्षेत्रीय भाषा या क्षेत्रीय भाषाओं के पुट के साथ बनी फिल्में आज नए 'राष्ट्रीय सिनेमा' के रूप में देश की सीमाओं से परे जाकर पारदेशीय प्रचार, प्रभाव और प्रतिष्ठा पाने में सफल हो रही हैं। जिससे हिंदी भाषा का कल्याण तो नहीं हो रहा पर बाजार के अनुकूल भाषायी विरोधाभासों से मुक्त एक बड़ा उपभोक्ता वर्ग अवश्य सृजित हो रहा है।

मूलशब्दः- समकालीन कथा-साहित्य, हिंदी सिनेमा, सिनेमाई भाषा, राष्ट्रीय सिनेमा, क्रॉस ओवर सिनेमा, पैन इंडियन सिनेमा, पारसी थियेटर, मुंबई नोआर।

1930 के दशक में तीन परिघटनाएँ एक साथ हुई, पहली 'आलम आरा' फिल्म के प्रदर्शन के द्वारा भारत में सवाक फिल्मों का आगमन हुआ। दूसरी ओर भारत में रेडियो प्रसारण के माध्यम से ब्रॉड- कास्टिंग की शुरुआत हुई और तीसरी ओर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के द्वारा 'पूर्ण स्वराज्य' की मांग के साथ राष्ट्रभाषा का प्रश्न मुखर रूप में सामने आया। ऊपरी तौर पर तीन अलग- अलग दिखने वाली घटनाओं ने हिन्दी सिनेमा की भाषा की निर्धारित किया।

'पूर्ण स्वराज' की मांग के साथ स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़े नेताओं को बड़े बड़े पैमाने पर लोगों से जुड़ने की आवश्यकता महसूस हुई। आंदोलन के इस चरण को अब पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने वाले शिक्षित वर्ग तक सीमित नहीं रखा जा सकता था। लिहाजा, उन्हें ऐसी भाषा में लोगों से संवाद स्थापित। करने की दरकार थी जो 'आम आदमी' की ज़बान हो और पूरे देश के जनमानस की समझ में आ सके। पूरे मुल्क के लिए एक सामान्य भाषा की तजवीज़ ने उन्हें एक ऐसी भाषा चुनने की प्रेरित किया। जिसमें आम प्रचलन के उई अल्फाज़ भी हो और खड़ी बोली की शैली और स्थापत्य भी हो। और इस प्रकार स्वाधीनता आंदोलन के नेताओं ने हिन्दी-उर्दू मिश्रित 'हिन्दुस्तानी' को भावी भारत की राष्ट्र्भाषा के रूप में प्रचारित करना शुरू किया।

Copyright © 2024 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)**

उसी प्रकार, ब्रॉडकास्टिंग की शुरुआत के बाद से ही एक ऐसी भाषा की आवश्यकता महसूस की गई, जो देश के विभिन्न हिस्सों में रहने वाले पढ़े-लिखे और निरक्षर जनमानस को एक साथ समझ आ सके। पूरे देश के लिए एक 'आम भाषा' की खोज भी अंततः 'हिन्दुस्तानी' पर ही आ ठहरी। हालांकि शहरी लोगों के मनोरंजन की वस्तु समझे जाने के कारण सिनेमा को उस वक्त तक आधिकारिक रूप से उतना महत्व नहीं मिलता था, जितना कि ब्रॉडकास्टिंग को। यह एक बड़ा कारण था कि 1927-28 की इंडियन सिनेमेटोग्राफी कमिटी की रिपोर्ट और 1950 की फिल्म इन्क्वायरी कमिटी की रिपोर्ट में भाषायी मुद्दे ' पर कोई बात नहीं की गई थी। इस स्थिति के संदर्भ में डेविड लेलिवेल्ड लिखते हैं:- "films were a matter of Considerable popular interest, especially in Urban areas, but again were not something. that attracted attention by political leader until a later era when film stars themselves entered politics.." इस स्थिति के बावजूद श्रव्य-दृश्य माध्यम होने के कारण अन्य देशों के सिनेमा की तरह हिन्दी सिनेमा में भाषा की मौलिक उपयोगिता को खारिज नहीं किया जा सकता था। 'आलम आरा' (1931) के प्रदर्शन के बाद से ही हिन्दी सिनेमा ने भाषा के स्तर नए प्रयोगों और को मुहावरों को गढ़ने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। फिल्म निर्माण में जुड़े खर्चों और व्यावसायिक माँग को देखते हुए फिल्म-निर्माताओं का यह प्रयास होता था कि उनकी फिल्में अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचे। अतः उन्होंने भाषायी स्तर पर 'हिन्दुस्तानी' कलेवर रखते हुए उसमें देश के अलग-अलग हिस्सों की क्षेत्रीयताओं को भी समाहित करना शुरू किया। चूंकि उस दौर में देश के अलग-अलग हिस्सों में रहने वाले लोगों के बीच हिन्दुस्तानी एक आम सम्पर्क भाषा थी और इसके अलावा हिन्दी सिनेमा के शिल्प और स्थापत्य पर 'पारसी थियेटर (जिसकी भाषा भी हिन्दुस्तानी ही थी) का सीधा प्रभाव था। इन दोनों के सम्मिलित प्रभाव ने उस दौर में हिन्दी सिनेमा को उर्दू मिश्रित हिन्दी या हिन्दुस्तानी बनाने में अहम भूमिका निभाई। मुकुल केसवन के अनुसार -"The Pre-history of Hindi Cinema is Located in theatre and the language of This theatre-the Parsi theatre of 1870s, for example was Urdu (Hindustani). Any repertory Company that aspired national metropolitan audience to a opposed to a provincial one, had to operate in a language that had the largest possible urban middle-Class reach. This language was Urdu (Hindustani) the same applied to Cinema."

आजादी के बाद सरकारी प्रयासों, विभाजन के बाद की परिस्थितियों, तथा भाषा की लेकर उभरे 'पहचान की राजनीति' ने ऊपरी तौर पर कॉस्मोपॉलिटन' बम्बई फिल्म उद्योग को तो प्रभावित नहीं किया लेकिन संरचनात्मक स्तर पर बाज़ार में हुए परिवर्तनों ने हिंदी सिनेमा की भाषा पर प्रभाव अवश्य डाला। हिन्दी सिनेमा में पूर्व से स्थापित उर्दू के जानकर लेखक और गीतकार बदस्तूर काम कर रहे थे, लेकिन संस्कृत- निष्ठ हिन्दी के भाषायी संस्कार वाले नए लेखक, गैर-उर्दू माहौल से आने वाले नए कलाकारों और निर्देशकों ने हिन्दी सिनेमा की भाषा में बहुआयामी परिवर्तन शुरू किए। 1960 के दशक तक आते-आते एक तरफ 'मुगले आज़म' जैसी, उर्दू प्रधान फिल्में बन रही थी, वहीं चित्रलेखा (1964) जैसी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी भाषा में बनी फिल्में आ रही थी और तो और इसी दौर में दिलीप कुमार की फिल्म 'गंगा जमुना' भी जिसकी भाषा भोजपुरी मिश्रित हिन्दी थी। 1970 के शुरुआती दौर में हिन्दी में आए 'समानान्तर सिनेमा' आंदोलन ने हिन्दी सिनेमा के कथ्य और शिल्प को तो प्रभावित किया ही, भाषा के स्तर पर भी इसने व्यापक बदलाव किये। इस सिने-आंदोलन से जुड़े फिल्मकारों ने एक तरफ संस्कृतनिष्ठ

हिन्दी के उपयोग को तरजीह दी। ऐसे फिल्मकारों में मणि कौल, कुमार शहानी जैसे फिल्मकारों को रखा जा सकता है। वहीं दूसरी तरफ श्याम बेनेगल जैसे निर्देशक तत्समीकृत शीर्षक वाली फिल्मों मसलन, अंकुर (1973), निशांत (1975), मथन और भूमिका (1976) आदि में क्षेत्रीय बोलियों की पुट वाली हिंदी का प्रयोग कर रहे थे। समानांतर सिनेमा आंदोलन के इस प्रभाव को रेखांकित करते हुए हरीश त्रिवेदी लिखते हैं-

"In the 1970s then, what the non-Hindi new wave directors did was to give Hindi another unwitting push towards recognizing its Sanskrit matrix which it shared in common with the vast majority of other Indian languages, and which in turn war principally what separated it from Urdu. Shortly afterwards, even Urdu- or Punjab-speaking makers of mainstream, commercial Hindi films moved towards adopting more Sanskritic titles and dialogue, in recognition of the fact that the old linguistic ground beneath their feet had shifted."

इसी दौर में 'एंग्री यंग मैन' वाली फिल्मों को भी लोकप्रियता मिल रही थी। इन फिल्मों के माध्यम से एक अलग भाषायी प्रयोग शुरू हुआ। जिसे 'बंबईया हिन्दी' (या 'टपोरी भाषा' कहकर भी संबोधित किया गया। अमिताभ बच्चन अभिनीत 'अमर, अकबर एन्थनी (1977), 'मुकद्दर का सिकंदर' (1978), जैसी फिल्मों में यह दृष्टिगत किया जा सकता है।

इस प्रकार की भाषा का प्रयोग 'मुंबई नोआर (Mumbai Noir) की आगे की फिल्में यथा परिन्दा (1989), सत्या (1998) या चांदनी बार (2001) आदि में देखा जा सकता है। इस दौर के बाद हिन्दी सिने संसार में भाषा के स्तर पर एक और बड़ा बदलाव 1991 में भारत सरकार द्वारा अपनाए गाए भूमंडलीकृत उदारीकरण के बाद आया। इसी के तहत फिल्म निर्माण को बाकयदा उद्योग का दर्जा प्राप्त हुआ (1998)। इस कालखंड में प्रवासी (NRI) पात्रों वाली फिल्म, बननी शुरु हुईं तथा क्रॉस ओवर सिनेमा' आदि का प्रचलन बढ़ा। लिहाजा हिन्दी सिनेमा की भाषा भी 'नई चाल में ढलने लगी'। इन फिल्मों की भाषा को एक नया मुहावरा मिला- हिंग्लिश(Hinglish)। यह ऐसी भाषा थी जिसमें एक ही पंक्ति में अंग्रेजी और हिन्दी भाषा के शब्द और कूट (code) समाविष्ट किए जाने लगे। हिन्दी सिनेमा के - बॉलीवुड के रूप में कायांतरण ने 'वैश्विक बाज़ार' की मांग के अनुकूल कथावस्तु ट्रीटमेंट के साथ-साथ भाषा के स्तर पर भी गहराई से प्रभावित किया। साथ ही फिल्म निर्माण से जुड़े लोगों की शिक्षा-दीक्षा उनकी अभिरुचि, सामाजिक- सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने भी इस भाषागत परिवर्तन में अहम भूमिका निभाई है।

कथा-साहित्य पर बनी फिल्मों भी हिन्दी सिनेमा में भाषा के स्तर पर हुए बदलावों से असंपृक्त नहीं रहे हैं। जिस दौर में ये फ़िल्में बनी, उसका प्रभाव इनकी भाषा पर साफतौर परिलक्षित होता है। साथ ही फिल्म के निर्माताओं और निर्देशकों के भाषायी, सांस्कृतिक और वैचारिक सरोकार भी फिल्म की भाषा की, प्रमुख निर्धारक रही है। मिसाल के तौर पर फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'मारे गए गुलफाम' पर आधारित. फिल्म 'तीसरी कसम' (1966) को लें तो इस फिल्म के निर्माण के दौर में सामाजिक-सांस्कृतिक फलक में आंचलिकता के प्रति एक आग्रह था, वहीं इसके निर्माता और निर्देशक शैलेंद्र और बासु भट्टाचार्य जैसे कलाधर्मी लोग थे। अत: फिल्म की भाषा न केवल कथा-वस्तु के अनुकूल है, बल्कि कथा में चित्रित परिवेश को गढ़कर दशकों के सामने प्रस्तुत कर पाने में समर्थ रही है। उसी प्रकार मणि कौल की 'उसकी रोटी' (1969) या कुमार

शहानी की 'माया दर्पण' (1972) जैसी फिल्मों में भी भाषा के स्तर कुछ ऐसा ही प्रभाव- सृजन दृष्टिगत होता है। इसके बरअक्स केशव प्रसाद मिश्र के उपन्यास 'कोहबर की शर्त' पर आधारित दोनों फिल्मों क्रमशः 'नदिया के पार' (1981) तथा 'हम आपके हैं कौन' (1994) की बात करें तो कथा-वस्तु के ट्रीटमेंट और भाषागत अनुप्रयोग के आधार पर फिल्म निर्माता निर्देशक के 'टेस्ट', उनकी संकल्पना तथा समय और माँग के अनुरूप भाषागत विन्यास में हुए परिवर्तनों को रेखांकित किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि दोनों फिल्में, 'राजश्री प्रोडक्शन' के ही द्वारा बनाई गयी हैं। 'नदिया के पार' (1981) में जहाँ पात्र, परिवेश और भाषा उपन्यास की मूल आत्मा के अनुरूप पूर्वी-उत्तर प्रदेश के लोकजीवन को चित्रित करती है, वहीं 'हम आपके हैं कौन' (1994) में कथा-परिवेश, पात्र, कहानी का ट्रीटमेंट और भाषा पूरी तरह परिवर्तित नजर आती है। बाजार की मांग, निर्देशक का व्यक्तिगत आग्रह, तथा लक्षित वर्ग आदि के कारण यह फिल्म लोकप्रियता और लोकप्रिय संस्कृति की निर्मिति में नए प्रतिमान गढ़ने में बेशक सफल रही हो, लेकिन कथ्य निरुपण और कथा के पीछे निहित सोच को उकेर पाने में सफल नहीं कही जा सकती। बाजार की मांग और लोकप्रियता का हवाला देकर हिन्दी सिनेमा में के निर्माण की प्रवृत्तियों को चिन्हित करते हुए डेविड लेलिवेल्ड लिखते हैं- "The demand for a standardized and simplified language for the films seems to ignore the special opportunities of expression generally associated with cinema. If one considers film as a representational art. attempting to present something other than itself. its attraction lies in the pretence that one is in the presence of real people and places. Cinema claims an extraordinary power of defining the limits of what is available in this world. But popular Indian cinema has always had other aims. Songs, dance, preposterous settings and ridiculous stories, a deliberate neutrality of language, region, ethnicity and class all this is taken as a sign of rootlessness. It would be more accurate to say that the reality" and roots of popular Indian cinema lie elsewhere, perhaps in dreams, perhaps within a self-contained world of the cinema itself."

आज हिन्दी सिनेमा ने अपने बॉलीवुड में हुए अपने कायान्तरण को पूरी तरह आत्मसात कर लिया है। जिसका असर फिल्मों की कथा-वस्तु, उनके प्रस्तुतिकरण लक्षित दर्शक-वर्गों, व्यावसायिक रूझानों, सामाजिक सरोकारों के साथ-साथ भाषायी अनुप्रयोगों पर भी पड़ा है। डिजिटल क्रांति, ओटीटी प्लेटफॉर्म्स के विकास और विस्तार ने भी इसे व्यापक रूप से प्रभावित किया है। जिसकी परिणति 'क्रॉस ओवर' सिनेमा से गुज़रते हुए 'पैन इंडियन सिनेमा' जैसी परिघटनाओं में देखा जा सकता है। क्षेत्रीय भाषा या क्षेत्रीय भाषाओं के पुट के साथ बनी फिल्में आज नए 'राष्ट्रीय सिनेमा' के रूप में देश की सीमाओं से परे जाकर पारदेशीय प्रचार, प्रभाव और प्रतिष्ठा पाने में सफल हो रही हैं। जिससे हिंदो भाषा का कल्याण तो नहीं हो रहा पर बाजार के अनुकूल भाषायी विरोधाभासों से मुक्त एक बड़ा उपभोक्ता वर्ग अवश्य सृजित हो रहा है।

संदर्भ

1. (संपा.) सारंगी, आशा, लैंग्वेज एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया, ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2009
2. (संपा.) हसन, जया, फोर्जिंग आइडेंटिटीज: जेंडर, कम्युनिटीज एंड द स्टेट इन इंडिया, रोट्लेज, टेलर एंड, फ्रांसिस ग्रुप, 2009
3. (संपा.) लाल, विनय, नंदी, आशिस, फिंगर प्रिंटिंग पॉप्युलर कल्चर: द मिथिक एंड आइकॉनिक इन इंडियन सिनेमा, ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2006
4. पारख, जवरीमल्ल, हिंदी सिनेमा का समाजशास्त्र, ग्रन्थ शिल्पी, प्र. लि. 2022 पारख, जवरीमल्ल, राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन और हिंदी सिनेमा, नॉटनल वेबसाइट